चतुर्थ अध्याय

असगर वजाहत का 'सात आसमान' उपन्यास : बदलते मानव का राजनीतिक जीवन

''असगर वजाहत का 'सात आसमान' उपन्यास : बदलते मानव का राजनीतिक जीवन''

प्रास्ताविक -

राजनीति का समाज और मानव-जीवन से गहरा संबंध है। विभाजित क्षेत्र पर प्रभाव प्रस्थापित करने के लिए राजनीति महत्त्वपूर्ण साधन है। मैक्रिडीस और वार्ड ने ''सार्वजनिक व्यवहार क्षेत्र में समस्या निर्धारण के हेतु निर्णय लेना तथा उस पर अंमल करने की प्रक्रिया को राजनीति माना है।''[1] स्पष्ट है कि राजनीति राष्ट्रीय जीवन पर असर करनेवाली महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। राजनीति के बारे में ईस्टन मानते हैं कि ''वे समस्त प्रकार की गतिविधियाँ राजनीति हैं, जो सामाजिक नीति के निर्माण और क्रियासन्वयन में अंतर्गस्त होती है।''[2] अतः कहना सही होगा कि मानव-जीवन की विकास-प्रक्रिया में राजनीति महत्त्वपूर्ण होती है। राजनीति के कारण समाज को एक संगठन प्राप्त होता है, जिसके कारण समाज सुरक्षितता महसूस करता है।

वर्तमान युग में मानव के राजनीतिक जीवन का अवमूल्यन हो रहा है। आज की राजनीति से सेवा, त्याग, तपस्या, बलिदान जैसे मूल्य पीछे पड़ने लगे हैं और वोटों की राजनीति का प्रसार हो रहा है। इस राजनीति में धर्म को महत्त्वपूर्ण हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। प्रो. योगेश अटल के अनुसार- ''समूहगत 'वोटों के बैंक' बनाने की चेष्टा ने धर्म और जाति को राजनीति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कारक का स्वरूप दे दिया है।''[3] कहना गलत न होगा कि इसी के परिणामस्वरूप समाज में धर्म-निरपेक्षता और सर्वधर्म समभाव के स्थान पर सांप्रदायिकता का पोषण हो रहा है। ऐसे ही अनेक मूल्यगत परिवर्तन भारतीय राजनीति में दृष्टिगोचर होते हैं। लब्ध प्रतिष्ठित रचनाकार असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में भारतीय राजनीति में घटित स्थित्यंतरों का यथार्थ चित्रण मिलता है।

---

1. चंद्रशेखर दिवान - राजनीतिक सिद्धांत और राजनीतिक विश्लेषण, पृ. 14
2. डॉ. जितेंद्र वत्स - साठोत्तरी हिंदी कहानी और राजनीतिक चेतना, पृ. 14
3. सं. हिमांशु जोशी - 'वागर्थ' मासिक पत्रिका, फरवरी, 2003, पृ. 31

4.1 मुगलकालीन राजनीतिक जीवन -

भारत की राजनीति की लंबी परंपरा है। समय के साथ-साथ परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप इस राजनीति में परिवर्तन परिलक्षित होता है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में मुगल बादशाह हुमायूँ के आगमन से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के राजनीतिक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इसीलिए मुगलकाल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक के राजनीतिक जीवन में आ रहे परिवर्तन का विवेचन-विश्लेषण यहाँ पर प्रस्तुत करना आवश्यक समझा है।

4.1.1 भारतीय राजनीति में मुगलों का प्रवेश - पार्श्वभूमि -

मुगलों का भारत में सातवीं सदी से ही संपर्क रहा है। तब उनके भारत के साथ व्यापार के संबंध थे। रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार - ''अरब सौदागरों का पहला बेड़ा भारतीय तट पर 636 ई. में आया था।''[1] उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि अरब के भारत से जो संबंध थे वह व्यापारी दृष्टिकोण से ही थे। बाद में सातवीं सदी के आसपास मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण करने का सिलसिला शुरू किया। मुहम्मद बिन कासीम ने सन् 712 में 41 बार आक्रमण किया और भारत में मुसलमानों का सही अर्थ में प्रवेश हुआ। मुस्लिमों का भारत प्रवेश भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण घटना है। मुगलों का भारत में राजनीतिक दृष्टिकोन से 12 वीं शताब्दी में संबंध प्रस्थापित हुआ दृष्टिगोचर होता है। के. दामोदरन के अनुसार ''बारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में तुर्कों ने मुहम्मद गौरी के नैतृत्व में उत्तर-पश्चिम से भारत पर सफल आक्रमण किया और दिल्ली तथा उत्तर-भारत के अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। 1206 में मुहम्मद गौरी की मृत्यु होने पर उसके सेनाध्यक्ष कुतबुद्दीन ऐबक ने सत्ता हथियाली। खुद को दिल्ली का पहला सुल्तान घोषित किया और गुलामवंश की आस्थापना की। इसके पश्चात् सन् 1526 ई. में तत्कालीन दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी को पराजित किया और मुगल साम्राज्य की बुनियाद रखी। मुगलों ने सन् 1526 ई. से लेकर सन् 1857 ई. तक भारतवर्ष पर शासन किया।''[2] स्पष्ट है कि मुगलों ने 1526 ई. से लेकर 1857 ई. तक मतलब करीब साड़े तीन सौ साल भारत पर शासन किया।

---

1. रामधारीसिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 213
2. के. दामोदरन - भारतीय चिंतन परंपरा, पृ. 301

4.1.2 मुगलकालीन राजनीति और धर्म -

सन् 1526 ई. से सन् 1857 ई. तक जिन बादशाहों ने शासन किया उनमें ''बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादूर, जहाँदार, फर्दुशियार, मुहम्मद, अहमद, आलमगीर-2, शाहआलम, मुहम्मद अकबर-2 और बहादुरशाह जफर''[1] आदि का समावेश होता है। इसमें से ज्यादातर शासनकालीन राजनीति पर धर्म का घोर प्रभाव परिलक्षित होता है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में बादशाह हुमायूँ के भारत आगमन से लेकर मुगलकाल के अंत तक की राजनीति पर पड़े धर्म के प्रभाव का यथार्थ चित्रण किया है। इस्लाम धर्म में दो पंथ-शिया और सुन्नी प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। हुमायूँ सुन्नी थे और अफगानों से हारने के बाद ईरान से हिंदोस्तान आए थे। लेखक कहते हैं- ''अफगानों से हारने के बाद जब हुमायूँ ईरान पहुँचा और वहाँ के शहंशाह से मदद मांगी तो उसके सामने यह शर्त रखी थी कि वो अगर शिया हो जाए तो मदद दी जाएगी।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से हर पंथ के लोग राजनीति के द्वारा अपने पंथ को मजबूत करने का प्रयास करते हुए परिलक्षित होते हैं।

युवा अकबर के शासनकाल में तो दरबार में शिया-सुन्नी दुश्मनी ने हद पार कर दी थी। दरबार में धर्म की राजनीति के कारण आपसी दुश्मनी बढ़ रही थी। उसी का फायदा उठाकर मुगल साम्राज्य पर अफगानों ने हमला किया। उस वक्त बैरम खाँ जो शिया थे सल्तनत के वकील थे। उनके कट्ठर दुश्मन तरदी बेग ने मुगलों की फौज का नेतृत्व किया। उस लड़ाई में मुगल फौज हार जाती है और तरदी बेग भाग आता है। यह बैरम खाँ के लिए सुनहरा मौका था। ''उसने तरदी बेग पर हल्जाम लगाया कि वो जान-बुझकर शाही सेना को लड़ाई के मैदान में छोड़कर भाग आया है। इस जुर्म में बैरम खाँ ने बिना बादशाह से पूछे तरदी बेग को फाँसी पर लटका दिया।''[3] उक्त कथन से धर्म की आड़ में की गई घिनौनी राजनीति का चित्रण मिलता है।

आकबर के बाद शाहजहाँ और औरंगजेब के जमाने में राजनीति में धर्म का स्थान बरकरार था। मुहम्मद तकी खाँ जो शाहजहाँ के शासन में मनसबदार के पद पर थे, इसी धार्मिक

---

1. Stanley Lane - Pool - Mediaeval India : Under Muhammedan Rule, P. 296-297
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 52
3. वही, पृ. 53

असंतोष के कारण मुसीबत में आ गए थे। उन्होंने औरंगजेब के दरबारी विरोधक दाराशिकोह का साथ दिया था। लेखक लिखते हैं- "दाराशिकोह के हारने और उसके कत्ल के बाद हालाँकि औरंगजेब ने मुहम्मद तकी की जागीरें और मनसब बरकरार रखा था लेकिन दरबार में शिया-दुश्मनी अपने उरूज पर पहुँच चुकी थी।"[1] इसी कारण ही औरंगजेब के शासनकाल तक आते-आते दरबार की आपसी दुश्मनी ने ही शासन को पतन के रास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया। औरंगजेब के बाद तो शासन में और गिरावट आई। लेखक का कथन है- "औरंगजेब के मरने के बाद दिल्ली के हालात बिगड़ते-बिगड़ते इतने बिगड़ गए कि सिपाही तलवारें और ढालें बेचने लगे।"[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहा जा सकता है कि मुगलकालीन राजनीति में धर्म का अनन्यसाधारण महत्त्व रहा है। इस्लाम धर्म के आपसी भेदभाव के कारण ही मुगल शासन की शक्ति क्षीण होती गई।

मुगल शासन के धर्म में आपसी भेदभाव तो था, लेकिन जब इस्लामेत्तर जाति का कोई आदमी इस्लाम धर्म का स्वीकार करना चाहता था तब उसका जोरदार स्वागत होता था। एक गाँव में राज सहाय नामक एक कायस्थ खानदान का युवा था। एक दिन उसके मन में न जाने क्या आया कि उसने यह घोषणा कर दी की वह वजीरे आजम मियाँ इल्यास के हाथों मुसलमान होना चाहते हैं। इस बात से सभी लोग खुश हो जाते हैं। लेखक लिखते हैं - "मियाँ इल्यास खुद आए और राज सहाय को न सिर्फ मुशर्रफ-ब-इस्लाम किया बल्कि उन्हें गोद लेकर अपना बेटा बनाया और जागीर अता कर दी।"[3]

4.1.3 मुगलकालीन शासन-व्यवस्था और कूटनीति -

मुगल शासन-व्यवस्था में सारी सत्ता बादशाह के हाथों केंद्रित होती थी। दिल्ली के बादशाह के अलावा अन्य छोटे संस्थानों का प्रमुख नवाब कहलाता था। नवाब दिल्ली के दरबार में नवाब कहलाते थे लेकिन अपने राज्य में उन्हें बादशाह जैसा सम्मान प्राप्त होता था। बादशाह अपने शासन को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए अनेक पदों का निर्माण करता था। इन पदों में

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 54
2. वही, पृ. 54
3. वही, पृ. 57

'वजीर' का पद सर्वश्रेष्ठ हुआ करता था। इकबाल बहादुर देवसरे के अनुसार ''राज्य के प्रशासन के लिए अन्य अनेक अधिकारी भी हुआ करते थे, जैसे कोतवाल, रौंद, अफसर, नायब, जनरल, दीवान, मुंशी, दरोगा, सूबेदार, सिसालेदार आदि।''[1] स्पष्ट है कि राज्य को चलाने के लिए अनेक लोगों के संगठन की आवश्यकता होती थी। इसी कारण शासन-व्यवस्था में सुव्यवस्थित अनुशासन था। भारत में ईस्ट इंडिया का शासन शुरू होने के बाद संस्थानों पर नजर रखने के लिए फिरंगियों का एक खास आदमी जिसे रेजीडेंट कहा जाता था; तैनात होता था। रेजीडेंट का राज्य में चल रहे हर छोटी-बड़ी घटना को गवर्नर-जनरल को बताना प्रमुख कार्य था।

उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने बहुचर्चित उपन्यास 'सात आसमान' में सन् 1814 में नवाब सआदत अली खाँ की मृत्यु के बाद अवध शासन के दरबार में निर्माण हुए कूटनीतियों के जंजाल को वास्तविक रूप में उजागर किया है। रेजीडेंट के हाथों में अनेक अधिकार होते थे जिनके आधार पर वह उस शासन को कमजोर करने के लिए अनेक गलत फैसले लेता था। नवाब सआदत अली खाँ ने अपने वसीयत में अपने बड़े बेटे को नहीं बल्कि छोटे बेटे शम्सुद्दौला को शासन का उत्तराधिकारी घोषित किया था। नवाब अपने बड़े बेटे गाजीउद्दीन हैदर को नहीं बल्कि छोटे बेटे को उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। इसका कारण बताते हुए लेखक लिखते हैं - ''गाजीउद्दीन हैदर जिन्नाति मिजाज के आदमी थे। दिल में जो आता था, वो सोचे समझे बगैर कर गुजरते थे। उनका याराना शहर के रइसों के उन लड़कों से भी था जिन्हें आम तौर पर नाकारा और निठल्ला समझा जाता था। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते थे कि गाजीउद्दीन हैदर सही दिमाग नहीं है, सिड़ी और दीवाने हैं। दूसरी तरफ शम्सुद्दीन अपने बड़े भाई के मुकाबले हजार गुना अच्छे आदमी थे। समझदार, संजीदा और पढ़े-लिखे।''[2] उक्त उद्धरण से उत्तराधिकारी होनेवाले दो भाईयों के चारित्र्यों की तुलना स्पष्ट होती है। यह बात सभी को मालुम होते हुए भी मिर्जा जाफर जो वजीर के पद के लिए लालायित थे, उन्होंने रेजीडेंट कर्नल जॉन बेली को समझाना शुरू किया कि बड़े बेटे कितने अच्छे हैं। अन्य कुछ विशिष्ट स्वार्थी लोगों ने भी छोटे बेटे को उत्तराधिकारी बनाने में विरोध दर्शाया। रेजीडेंट भी जानते थे कि अगर छोटे-बेटे को नवाब बनाया जाता है तो

---

1. इकबाल बहादुर देवसरे - बेगम हजरतमहल, पृ. 207
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 111

उनके अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाएगा। उन्हें अपने अधिकारों का मनचाहा इस्तेमाल करने की छुट नहीं मिल पाएगी। यह सारी बातें सोचने के बाद रेजीडेंट ने छोटे बेटे शम्सुद्दौल्ला को समझाना चाहा तो उन्होंने हंगामा खड़ा कर दिया। लेखक लिखते हैं- ''उनकी जिद देखकर जॉन बेली समझ गए कि आदमी खतनाक है और कहीं इसे नवाब बना दिया जाए तो गजब हो जाएगा। बहरहाल, एलान ये हुआ कि गाजीउद्दीन हैदर नवाबी की गद्दी पर बिठाए जाएँगे। अगले ही दिन गाजीउद्दीन मसनदनशीन हो गए। धूमधाम हुई और एक बाजी बिछ गई।''[1] उपरोक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि फिरंगी और कुछ दरबारी अपना स्वार्थ पाने के लिए राजव्यवस्था में गलत फैसले लेते थे। उनकी इस कूटनीति से शासन की राजनीति में अनेक नई समस्याओं का प्रार्दुभाव होता था जिसकी वजह से प्रजा को अनेक कष्ट उठाने पड़ते थे।

नवाब बन जाने के बाद गार्जीउद्दीन हैदर फिरंगी और चापलूसी करनेवाले लोगों के साथ रात-दिन शराब आदि मादक द्रव्यों के नशे में डूब जाने लगे। मादक द्रव्यों का प्रसार फिरंगियों की देन मानी जाती है जिसके कारण के बारे में प्रतापनारायण मिश्र कहते हैं- ''भारतीयों को आलसी और अकर्मण्य बनाने के लिए बड़े पैमाने पर मादक वस्तुओं का प्रचार किया जा रहा था।''[2] स्पष्ट है कि फिरंगियों की ऐसी कूटनीतियों के सबसे पहले शिकार राजा-महाराजा और उच्च वर्ग ही होते थे। गाजीउद्दीन हैदर के मदिरा-मदिराक्षी, नृत्य-गान में दिन-रात की डुबकियाँ तथा हरम में बेगमों की भरमार इन सारी बातों से दरबार में कूटनीति के रोज नए-नए पहलू सामने आने लगे। वजीर होने की लालच रखनेवाले मिर्जा हादी और मेहँदी अली खाँ इन दोनों को आपस में लड़वाकर नवाब की चापलुसी करनेवाले और सबसे बड़े कूटनीतिज्ञ मौतमुद्दौला वजीर बन जाते हैं। वजीर बनते ही उसने अपने सारे विरोधियों का बंदोबस्त किया। उन्हें सबसे बड़ा डर नवाब के छोटे भाई शम्सुदौला का ही था। इसलिए वह मिर्जा हादी को साथ लेकर एक चाल चलते हैं जिसका कथन दृष्टव्य है- ''मौतमुद्दौला ने मिर्जा हादी को इस बात के लिए तैयार किया कि वो शम्सुद्दौला के पास जाकर उनसे कहें कि नवाब का दिल अब तक उनकी तरफ से साफ नहीं है और मौतमुद्दौला उनके खिलाफ ऐसी साजिश रच रहे हैं कि उन्हें नवाब को जहर देने के जुर्म में फाँसी दी जा सकती

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 112
2. डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ल - प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ. 94

है। ये सुनते ही शम्सुद्दौला घबरा गए। वो जानते थे कि ऐसी साजिशें रचना मौतमुद्दौला के बाएँ हाथ का काम है।''[1] अतः शम्सुद्दौला डरकर शहर छोड़कर चला जाता है और मौतमुद्दौला को खुला रास्ता मिल जाता है।

मौतमुद्दौला नवाब के सामने तो उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे पर पीठ पीछे सारे राज्य का सर्वनाश करके अपने स्वार्थसिद्धि के पीछे लगे रहते थे। लेखक लिखते हैं- ''गाजीउद्दीन हैदर वैसे ही सिड़ी दिमाग थे। उस पर भांग और शराब का नशा करते थे। नशे की हालत में बदहोश रहा करते थे। कभी-कभी आँख खुलती तो हमेशा मौतमुद्दौल्ला को सामने पाते। मौतमुद्दौला हाथ बाँधे जाँनिसारी के लिए तैयार नजर आते।''[2] थोड़े ही दिनों में मौतमुद्दौला ने नवाब को नशे में डुबोकर शासन में अपने अधिकार के बल पर इतनी धांधली मचा दी की शासन में सिर्फ उसका ही सिक्का चलने लगा। लेखक लिखते हैं- ''अब मौतमुद्दौला को कोई रोकने-टोकनेवाला न था। अपने लिए बड़ी जागीरें हासिल कर लीं। शाही खजाने के बजाय रकम अब सीधे उनके पास आने लगी।''[3] अतः निष्कर्षतः कहना सही होगा कि मुगलकालीन राजनीति में कूटनीति का अहं स्थान था। नवाबों की विलासिता, मदिरा-मदिराक्षी, नृत्य-गान के कारण उनकी प्रजा के प्रति बहुत कम आस्था दिखाई देती है। राज-व्यवस्था में स्वार्थ, कूटनीति, आपसी द्वेष, जलन तथा वजीरों के हाथ में होनेवाला शक्ति का संगठन और बादशाह का मात्र कठपुतला बनकर रह जाना इन सारी बातों से मुगलकालीन राजनीतिक जीवन बुरी तरह प्रभावित दृष्टिगोचर होता है।

4.1.4 मुगलकालीन राजनीति में स्त्रियों का सहभाग

मुगलकाल में भारत की राजनीति में कुछ मुस्लिम स्त्रियों का सहभाग महत्त्वपूर्ण रहा है। इसमें से रजिया सुल्ताना और जहाँआरा इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा अन्य कई स्त्रियों ने पर्दे के पीछे रहकर राजकार्य संभाला हुआ दृष्टिगोचर होता है। असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में अवध के बादशाह गाजीउद्दीन हैदर की पत्नी बादशाह बेगम की कुछ राजनीतिक गतिविधियों का यथार्थ चित्रण मिलता है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 114
2. वही, पृ. 116
3. वही, पृ. 120

बादशाह गाजीउद्दीन हैदर को नशे से महिनों होश न आता था। इसी का फायदा उठाकर वजीर मौनमुद्दौला ने क्रूरतापूर्वक व्यवहार करके अवध की राजनीति में अपनी शक्तिशाली पहचान बनाई। शासन में एक तरह से वही बादशाह माने जाने लगे थे। उनकी ताकद का परिचय देते हुए लेखक का कथन है- ''गाजीउद्दीन हैदर उनकी मुट्ठी में थे। मुल्क-ओ-माल के वजीर उनके इशारों पर नाचते थे। जिस कदर उनके पास ताक़त थी उसी प्रकार उनके पास इख्तियारात और दौलत थी। शाही खजाने की चाबी उनके जेब में थी। उन्होंने अपने दुश्मनों के साथ ऐसा सुलूक किया था कि लोग काँप जाते थे।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से बादशाह के गैर-जिम्मेदारी के कारण राज्य पर आए हुए मौतमुद्दौलारूपी संकट का परिचय मिलता है। इस संकट ने राज्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न खड़ा किया था। इन सारी बातों को देखने के बाद बेगम ने शासन के इस बिगड़ते संतुलन को संभालने के लिए दरबारी राजनीति में प्रवेश करने का फैसला किया। दरबार में फतेहअली पुराने कसे हुए राजनीतिज्ञ थे। बेगम उन्हें साथ लेकर रेजीडेंट के पास जाती है, लेकिन मौतुद्दौला ने रेजीडेंट से लेकर सारे अन्य दरबारियों को खरीदा था। इसी बीच नवाब के बेटे शहजादे नसीरूद्दौला को ऐयाशी, शराब और सुंदरियों का लालच दिखाकर अपने हाथ की कठपुतली बनाते हैं। लेखक लिखते हैं- ''अब वो शहजादे को अपनी कठपुतली से ज्यादा न समझते थे। उन्होंने ये सोच रखा था कि शहजादे अगर बादशाह भी बन जाते हैं तो उनकी गिरफ्त में उसी तरह होंगे जैसे पिंजड़े में चिड़िया होती है।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से एक वजीर शासन पर अपनी पकड़ को किस हद तक मजबूत कर सकता है इसका परिचय मिलता है। बेगम को लगा कि अब पानी सिर से जा रहा है तो उसने अपनी शाही मोहर लगाकर लाट साहब को एक लंबा खत लिखा। खत में साफ-साफ लिखा कि ''बादशाह मौतमुद्दौला के कैदी हैं। रेजीडेंट और मौतमुद्दौला में दाँतकाटी दोस्ती है। अगर कोई भी तहकीक रेजीडेंट के जरिए कराई जाएगी तो सच्चाई सामने नहीं आ सकती। बल्कि इसके बूरे नतीजे ही निकलेंगे। हो सकता है कि बादशाह को जहर दे दिया जाए या कत्ल करा दिया जाए। इसलिए लाट साहब का फर्ज है कि वो खुद आकर तन्हाई में बादशाह से पूछें। अगर ऐसा न किया गया तो अवध का शाही घराना खत्म हो

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 110
2. वही, पृ. 137

जाएगा।''[1] खत मिलने के बाद लाट साहब आकर मौतमुद्दौला का काला इतिहास सुनते हैं और उसे गिरफ्तार करके सजा देने का हुक्म देते हैं। निष्कर्षतः कहना सही होगा कि प्रसंगावधान संभालकर अपने शासन की आन बनाए रखने के लिए स्त्रियों द्वारा की गई चतुरता इतिहास में प्रसंशनीय है। बादशाहों की विलासिता शासन के लिए जहर थी, जिसने शासन को पतन के किनारे लाकर खड़ा किया। लेकिन स्त्रियों ने राजनीति में दिखाया व्यवहार चातुर्य ही उस शासन को जिंदा रखने के लिए संजीवनी साबित हुआ।

4.2 अंग्रेजकालीन राजनीतिक जीवन -

आखरी मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर का पतन करके अंग्रेजों ने भारत पर अपना शासन कायम किया। सत्ता की स्थापना होने के साथ ही शासन को और दृढ़ करने के लिए उन्होंने भारतीय जनता पर अनन्वित अन्याय और अत्याचार शुरू किया। इस अन्याय और अत्याचार से भारतीय जनता त्रस्त हो गई थी। इसी के परिणामस्वरूप हर भारतीय के दिल में अंग्रेजों के विरोध की आग धधकने लगी थी। उपन्यासकार असगर वजाहत ने अंग्रेजकालीन कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं को 'सात आसमान' उपन्यास में मार्मिकता से उद्घाटित किया है।

4.2.1 1857 का स्वाधीनता संग्राम -

1857 का स्वाधीनता संग्राम भारतीय इतिहास को मोड़ देनेवाली महत्त्वपूर्ण घटना है। डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग की टिपण्णी द्रष्टव्य है- ''सन् 1857 की क्रांति में 'संगठन और एकता' की भावना का जन्म हो गया था। अंग्रेजी सत्ता से, न केवल अपनी रक्षा की, अपितु उसे समूल उखाड़ फेंकने की भावना प्रबल हो रही थी।''[2] स्पष्ट है कि यह स्वाधीनता संग्राम अंग्रेजों की सत्ता को समाप्त करने के साथ-साथ भारतीय सभी जाति-धर्मों की एकता का प्रतीक माना जाता है। 'सात आसमान' उपन्यास में स्वतंत्रता संग्राम का यथार्थ चित्रण हुआ है।

अंग्रेजों ने भारतीय राजनीति में 'फोड़ो और राज करो' की नीति को हमेशा अपनाया था। विभिन्न धर्मियों को उनके धर्म के आधार पर आपस में लड़ाना और उनकी शक्ति को क्षीण करना यह उनकी कूटनीति थी। भारतीय समाज-जीवन में धर्म का अनन्यसाधारण महत्त्व

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 138 - 139
2. लक्ष्मीनारायण गर्ग - हिंदी कथा-साहित्य में इतिहास, पृ. 44

है और उसी का फायदा अंग्रेजों ने लेने की कोशिश की। अंग्रेजों की फौज में भारतीय सिपाही थे। धर्मभ्रष्ट करने के लिए सबसे पहले उन्हें ही निशाना बनाया गया। इस क्रांति की कारणमीमांसा के बारे में लेखक लिखते हैं- ''आसपास के गाँव-देहातों में इसका बड़ा असर हुआ कि कंपनी अपने सिपाहियों को जो नए कारतूस देती है उन्हें दाँत से खोलना पड़ता है। उन कारतूसों को बनाने में गाय और सुअर की चर्बी इस्तेमाल की जाती है।''[1] उपर्युक्त कथन के आधार पर कहना गलत न होगा कि अंग्रेजों की ऐसी नीति रही होगी कि भारतीय सिपाहियों को धर्मभ्रष्ट किया जाय ताकि वह अपने धर्म का स्वीकार करेंगे, जिससे अंग्रेजों की सत्ता भारत में हमेशा रहेगी। किंतु वह भारतीयों की अपने धर्न के प्रति होनेवाली आस्था और आत्मीयता को पहचान नहीं पाए थे, परिणामस्वरूप सन् 1857 की क्रांति की गूँज उठी।

मोहम्मद खाँ कानपुर के एक इलाके के बड़े रईस थे। उन्हें मालूम हुआ कि कानपुर में भी सिपाहियों ने बगावत की है। उस वक्त नाना-साहब पेशवा ने अपने हाथ में शासन लिया। बाद में खबर फैलती ही गई कि बड़े-बड़े शहरों में भी बगावत हो गई है। कानपुर में चार-पाँच अंग्रेज थे वह भाग गए थे। कुछ दिनों बाद गोलियाँ चलने लगी और अनेक खबरें फैल गईं। खबरों के बारे में लेखक लिखते हैं- ''पहली ये कि खजाने और जेल को बागियों ने तोड़ दिया है, दूसरे ये कि फिरंगी जमुना पार करके बाँदा भाग गए हैं और तीसरी ये कि फिरंगियों के डिप्टी कलेक्टर हिकमत उल्ला ने जिले की हुकूमत अपने हाथ ले ली ही।''[2] उपर्युक्त कथन से भारतीय सिपाहियों के क्रांति की ताक़त का अनुमान लगाया जा सकता है। मिस्टर टकर जो जज थे, नहीं भागे थे। उन्होंने बागियों पर गोलियाँ चलाई तो बागियों ने उनके बँगले में आग लगाकर उन्हें जिंदा जला दिया। बागियों ने अंग्रेजों के अनेक ठिकाणों पर आग लगवाई थी। लेखक का कथन है- ''गिरजा और डाकबँगला भी जला दिया गया था। पूरी सिविल लाईन में राख हुई कोठियों के अलावा कुछ नजर न आता था।''[3] हिकमत उल्ला ने मुहम्मद खाँ के पास अपने आदमी भेजे थे। मुहम्मद खाँ ने भी कहा था कि वह हिकमत उल्ला के साथ है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 59
2. वही, पृ. 60
3. वही, पृ. 60

बागियों ने विद्रोह तो किया लेकिन अंग्रेजों का आतंक उनके दिल से नहीं गया था। कुछ ही दिनों में अंग्रेजों ने पूरी ताक़त के साथ इलाहाबाद के किले पर कब्जा किया और बागियों को फाँसी पर लटकाकर शहर में हत्याओं का सिलसिला शुरू किया। नाना साब पेशवा ने अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए ज्वालाप्रसाद को पाँच हजार फौज के साथ इलाहाबाद भेजा। रास्ते में उन्होंने अंग्रेजों की एक टुकड़ी देखी जिसे देखकर वह समझ गए कि अंग्रेजों की इतनी ही फौज है। उन्होंने अपनी फौज को इस टुकड़ी का पीछा करने का आदेश दिया और वहाँ पर ही फँस गए। लेखक लिखते हैं- ''फिरंगी हिरावल दस्ता तेजी से जाकर अपनी फौज में मिल गया जो पूरी तरह मुस्तैद थी। सामने तोपें मुँह फाड़े खड़ी थीं और पीछे योरोपियन नियम-कायदों के मुताबिक फौज मौजूद थी। जैसे ही ज्वालाप्रसाद की फौज आँधी की तरह सामने आई वैसे ही तोपें गरजने लगीं।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि भारतीय फौज में दूरदृष्टि का अभाव और रणनीति की कमी के कारण वह अंग्रेजों के फौज के सामने टिक नहीं पाई। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम के असफलता का यह एक अहं कारण माना जाता है।

नाना साब पेशवा की फौज को हराने के बाद फिरंगियों ने कानपुर का रूख अपनाया। मुहम्मद खाँ जानते थे कि फिरंगी फौज की कत्ल और लूटमार से नाना साब पेशवा की बची फौज कानपुर को नहीं बचा सकती। ''इलाहाबाद के कत्लेआम से ही पता चल गया था कि फिरंगी फौज कैसा सख्त बदला ले रही है। शहर लूटा गया तो सबसे पहले रईस ही निशाना बनेंगे। फिरंगी तोपों का कौन मुकाबला कर सकता है ?''[2] इसी डर से मुहम्मद खाँ हिकमत उल्ला को दिए गए कसम को तोड़कर उसे बिना बताए रात में किला छोड़कर किसी सुरक्षित जगह पर चले जाने का फैसला करते हैं। रात में सोते बच्चों को चुपचाप पालकियों में लिटा दिया। सोना-चांदी और कुछ जरूरी चीजें लेकर वह रात के अंधेरे में पीछले दरवाजे से सुरक्षित जगह के लिए निकलते हैं। उनके मन में डर भी था कि ''अगर हिकमत उल्ला को पता चल गया, अगर रास्ते में आते-जाते किसी ने देख लिया तो क्या होगा। इसी डर-खौफ और उम्मीद के साथ किले के पीछले

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 60 - 61
2. वही, पृ. 61

दरवाजे से एक छोटा-सा कारवाँ अँधेरे में डूब गया।''[1] अतः कहना गलत न होगा कि 1857 के संग्राम पर रईस लोगों की ऐन वक्त पर धोखा देने की प्रवृत्ति ने असफलता की मोहर लगा दी।

मुहम्मद खाँ जमूना के किनारे जंगल में अपने जागीर के आखरी गाँव में चार महीने तक रहते हैं। लेखक लिखते हैं- ''उन्हें यहीं ये खबर मिली कि फिरंगी फौजों ने हिकमत उल्ला को फाँसी दे दी है। यहीं यह भी मालूम हुआ कि खजुआ के पास इमली के एक पेड़पर बावन लोगों को फाँसी पर लटका दिया गया। यहीं यह भी पता चला कि शहर को चारों तरफ से घेरकर फिरंगी फौज ने जला डाला है।''[2] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर निष्कर्षतः कहना सही होगा कि भारतीय राजनीति में 1857 का संग्राम एक विद्रोह के रूप में शुरू हुआ। इसमें उच्चवर्गियों को छोड़कर सारे भारतीयों ने अपने जाति-धर्मों को भूलकर एक-दूसरे का साथ दिया। फिर भी कुछ कारणों की वजह से इस क्रांति का अंत दर्दनाक और कारूनिक हुआ। स्वतंत्रता के बाद भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से निकलकर ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो गया।

4.2.2 जमींदारी प्रथा -

भारत में अठरवीं सदी में ही जमींदारी प्रथा का उदय हो गया था। जमींदारी प्रथा के उदय के बारे में प्रा. के. एच्. ठक्कर कहते हैं- ''अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने बंगाल में जमींदारी प्रथा को शुरू किया।''[3] अंग्रेजों की सत्ता स्थापित होने के बाद उन्होंने जमींदार वर्ग को प्रेरणा दी, जिससे भारत में यह वर्ग सबसे अधिक अमीर बन गया। जमींदार लोगों के पास ही उस वक्त सबसे ज्यादा भूमि थी। प्रा. के. एच्. ठक्कर के अनुसार- ''जमींदारों के हाथ में पैंतालिस प्रतिशत भूमि थी।''[4] उपर्युक्त उद्धरण से जमींदारों की शक्ति तथा अमीरी का अनुमान लगाया जा सकता है। भारतीय राजनीति में जमींदारों का विशेष स्थान रहा है। जमींदार अपनी जमींदारी बचाने के लिए हमेशा अंग्रेजों का समर्थन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। डॉ. चंडीप्रसाद जोशी लिखते हैं- ''जमींदार अंग्रेजों के समर्थक थे। राजनैतिक दृष्टि से यह वर्ग भारत को परतंत्र ही देखना चाहता था।''[5] स्पष्ट है कि अंग्रेज और जमींदारों के सौहार्दपूर्ण संबंध थे। जमींदारों की स्वार्थी वृत्ति के

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 61 - 62
2. वही, पृ. 62
3. प्रा. के. एच्. ठक्कर - निवडक देशाचा आर्थिक इतिहास, पृ. 70
4. वही, पृ. 87
5. डॉ. चंडीप्रसाद जोशी - हिंदी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, पृ. 210

कारण ही भारतीय राजनीति में अंग्रेजों का शासन बुलंद होता गया। बहुचर्चित उपन्यासकार असगर वजाहत ने अपने 'सात आसमान' उपन्यास में जमींदारी प्रथा और उसके भारतीय राजनीति में हुए बुरे परिणामों का सूक्ष्मता से चित्रण किया है।

अंग्रेज जानते थे कि किसानों से लगान वसुल करना उनके बस में नहीं है। इसलिए उन्हें जमींदारों की सहायता से आसानी से कर राशि वसुल करने का रास्ता अच्छा लगा। इसी कारण उन्होंने जमींदारी प्रथा को प्रोत्साहन दिया और उनके द्वारा लगान वसूल करने लगे। बड़े जमींदार अंग्रेजों से अच्छे संबंध प्रस्थापित करना गौरवजन्य मानते थे। अंग्रेजों से गौरव प्राप्त करने के लिए वह गरीब किसानों से बहुत ही निर्घणता के साथ व्यवहार करते हुए लगान वसूल करते थे। उपन्यास में अवध के एक इलाके में चकलेदार के रूप में अली खाँ को अंग्रेजों के द्वारा नियुक्त किया जाता है। अली खाँ बहुत सख्त आदमी थे। अंग्रेज हर साल लगान बढ़ाते थे और अली खाँ एक-एक पैसा वसुल करते थे। जो किसान लगान नहीं दे पाता था उसका सामान, जेवर, जमींन तथा जानवर नीलाम करा देते थे। लेखक लिखते हैं- ''नीलामी में सबसे बड़ी बोली वही लगाते थे या उनकी बोली के बाद दूसरों में बोलने की हिम्मत न रह जाती थी।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से नीलामी की अन्यायपूर्ण प्रथा दृष्टिगोचर होती है। जैसे-जैसे लगान बढ़ता गया, काश्तकार और किसान उजड़ते गए। अली खाँ और सख्ती से लगान वसूल करने लगे। लेखक का कथन है- ''उनका नाम सुनकर ही लोग काँप जाते थे। उनके आदमी खड़ी फसलें कटवा लिया करते थे। वे पूरे-के-पूरे गाँवों पर हल चलवा देते थे। उनका आतंक इतना था कि लोग उनके इताब से अच्छा मौत को समझते थे।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से जमींदारों की कुप्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इसमें अंग्रेजों की नजरों में अपने को बढ़ाने के साथ-साथ जमींदारों का स्वार्थ भी परिलक्षित होता है।

जमींदारों के पास हजारों एकड़ जमीन होती थी। इस जमीन को जोतने के लिए किसान और कारिंदे होते थे। अब्बा मियाँ को विरासत के रूप में जमींदारी मिलती है। वह किसानों और कारिदों के द्वारा सख्ती से जमीन जोतते थे, लेकिन जब कभी गाँववाले और किसान या कारिदों में कोई झगड़ा होता था तो अब्बा मियाँ गाँववालों के साथ बुरा सलुक करते थे। एक बार

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 57
2. वही, पृ. 57

एक कारिंदे और गाँववालों में झगड़ा हो गया जिसमें उस कारिंदे का हाथ टूट गया। अब्बा मियाँ को पता चलते ही- ''उन्होंने मेवातियों से उस पूरे गाँव को लुटवाकर उसमें आग लगवा दी जहाँ उनके कारिंदे पर लाठी चलाई गई थी।''[1] स्पष्ट है कि अंग्रेजों का साथ होने के कारण जमींदार निड़र बन गए थे। एक तरह से वह अपने-अपने इलाके के सर्वेसर्वा बन गए थे। संक्षेप में जमींदारी प्रथा के कारण अमीर और गरीबों के भेद में वृद्धि हो गई। वह खाई आज भी बरकरार है। इसी कारण भारतीय राजनीति में जमींदारी प्रथा को काली घटना मानी जाती है।

4.2.3 लगानबंदी आंदोलन -

भारतीय राजनीति में काँग्रेस की स्थापना होने के बाद सबसे पहले उन्होंने जमींदारों के विरोध में लगानबंदी का अभियान चलाया। 'सात आसमान' उपन्यास में इसका अल्प मात्रा में चित्रण मिलता है। अब्बा मियाँ के इलाके के किसानों ने लगानबंदी आंदोलन के अनुसार लगान देने का विरोध किया। तभी अब्बा मियाँ ने जमींदार के नाते इस अभियान को कुचल दिया। लेखक का कथन दृष्टव्य है- ''जब गाँवों में लगानबंदी का आंदोलन शुरू हुआ तो उसके साथ अब्बा मियाँ ने बहुत सख्तीवाला रूख अपनाया। बड़ी तादाद में किसानों को बेदखल किया। उन पर तरह-तरह के झूठे-सच्चे मुकद्दमे चलाए।''[2] निष्कर्षतः गाँव-गाँव शुरू हुए लगानबंदी आंदोलन से स्वतंत्रता के प्रति लोगों में जागृति का उदय हुआ परिलक्षित होता है। यह एक तरह से स्वतंत्रता आंदोलन का ही एक भाग था। लेकिन जमींदार अपनी जमींदारी रक्षा हेतु नहीं चाहते थे कि देश स्वतंत्र हो जाय। इसलिए उन्होंने इस आंदोलन को कुचलने का भरकस प्रयास किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

4.2.4 असहयोग आंदोलन -

सारे भारतवासियों को साथ लेकर महात्मा गांधी के द्वारा अंग्रेजों के खिलाफ चलाया गया यह असहयोग आंदोलन था। भारतीयों के स्वतंत्रता के लिए किए गए दृढ़ निश्चय की पूर्ति के प्रयास का एक कदम, के रूप में इस आंदोलन को भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंग्रेजों को किसी भी प्रकार का सहयोग न करना, जिससे अंग्रेज सत्ता कमजोर पड़ जाय यह इस

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 37
2. वही, पृ. 37 - 38

आंदोलन का उद्देश्य था। इस आंदोलन से जमींदार वर्ग भी प्रभावित दृष्टिगोचर होता है। असगर वजाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में इसका कुछ मात्रा में चित्रण हुआ है।

एक बार अब्बा मियाँ अपने इलाके में गए और देखा तो सारे लोगों ने अंग्रेजों के साथ-साथ जमींदारों के खिलाफ भी असहयोग आंदोलन चलाया था। इस आंदोलन को भी अब्बा मियाँ ने अपने तरीके से कुचल डाला। अब्बा मियाँ के विरोध में चलाए गए आंदोलन के स्वरूप के बारे में लेखक लिखते हैं- ''अब्बा मियाँ चौरे पर थे तो धोबी नहीं आया। भंगी नहीं आया। नाई नहीं आया। पता चला कि ये सब असहयोग आंदोलन में शामिल हैं और चाहते हैं कि जमींदार गाँव से भाग जाए।''[1] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर कहना सही होगा कि भारत में चलाए गए अनेक आंदोलनों में छोटे-से-छोटे आदमियों का सहभाग ही स्वतंत्रता की आधारशिला है। सभी लोगों की एकता और महात्मा गांधीजी के द्वारा पढ़ाए गए अनुशासन के कारण ही भारत में अनेक रक्तरहित क्रांतियाँ हो गई हैं, जो विश्व में अन्यत्र दुर्लभ हैं।

4.3 स्वाधीनता प्राप्त भारतीय मानव का राजनीतिक जीवन -

सन् 1885 में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। बाद में काँग्रेस नर्म और गर्म दलों में विभाजित हुआ। अंग्रेज भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को किसी प्रकार कुचलने का प्रयास कर रहे थे। अतः ''इसी दुर्भावना से प्रेरित होकर सरकार ने मुसलमानों को उकसाया जिसके फलस्वरूप अपने सांप्रदायिक हितों की आड़ में मुस्लिमों ने स्वतंत्र संस्था की मांग की जिसके आधार पर सन् 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।''[2] सन् 1920 में काँग्रेस की बागड़ौर गांधीजी के हाथ में आने के साथ राजनीति में गती आई। बाद में भारतीय राजनीति में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं लेकिन जिन्ना साहब ने मुस्लिम लीग के माध्यम से अलग पाकिस्तान की मांग करनेवाली घटना बहुत ही खेदजनक थी। जिन्ना ने मुसलमानों को आवाहन किया कि ''भाइयो, मुसलमानों का एक मंच है, एक खुदा, एक कलमा। सभी इस झंड़े के नीचे आकर अपने हकों के लिए लड़ों।''[3] कहना गलत न होगा कि यहाँ से ही सांप्रदायिकता की नींव रखी गई। मुस्लिम लीग ने मार्च, 1940 के अधिवेशन में

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 38
2. लक्ष्मीनारायण गर्ग - हिंदी कथा-साहित्य में इतिहास, पृ. 50
3. चंद्रकांता - कथा सतीसर, पृ. 147

स्वतंत्र पाकिस्तान की मांग की। जिन्ना की इस नीति से पूरे देश में असंतोष फैल गया। सन् 1942 का 'भारत छोड़ों' आंदोलन और अंत में 15 अगस्त, 1947 में भारत का स्वतंत्र होना और साथ-साथ असंख्य निष्पाप लोगों के खून से रंजित भारत-पाक का विभाजन यह भारतीय राजनीतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। इसमें स्वाधीनता आंदोलन से लेकर भारत-पाक विभाजन तक समाज के आम आदमी के हिस्से सिर्फ अमानुषता और अमानवीयता ही आई हुई परिलक्षित होती है। असगर वजाहत ने स्वाधीनता के बाद आई कुछ महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं को 'सात आसमान' उपन्यास में यथार्थता के साथ चित्रित किया है।

4.3.1 जमींदारी प्रथा का उन्मूलन -

स्वाधीनता के वक्त भारतीय राजनीति में घटी सारी घटनाओं से एक ऐसा वर्ग बेखबर था जो अंग्रेजों के जमाने में उनके छत्रछाया में सुखनैव जीवनयापन कर रहा था। वह था जमींदार वर्ग जो अंग्रेजों के संरक्षण में गरीबों का शोषण कर अपने ही भोग-विलास में लिप्त था। उन जमींदारों के सपने में भी यह बात नहीं थी कि इतने बड़े शासन के मालिक अंग्रेज भारत छोड़ सकते हैं। उपन्यासकार ने उनकी मानसिकता को चित्रित किया है- ''सबकुछ हो सकता है साहब, सबकुछ हो सकता है लेकिन दो बातें नहीं हो सकती। अंग्रेज हिंदोस्तान से नहीं जा सकते और जमींदारी खत्म नहीं हो सकती। मियाँ, अंग्रेज और हिंदोस्तान से चले जाएँ ? नामुमकिन। अरे साहब, इतनी बड़ी सल्तनत, जरा सोचिए बर्मा से लेकर बिलोचिस्तान तक फैली हुकूमत; खरबों रुपए की आमदनी और करोड़ों लोगों पर हुकूमत, अंग्रेज कैसे छोड़ सकते हैं।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से जमींदारों का अंग्रेजों के प्रति दृढ़ विश्वास और आत्मीयता परिलक्षित होती है। लेकिन जब सचमुच अंग्रेज जा रहे हैं ये जानकर उन लोगों को जबरदस्त धक्का लगा। लेखक लिखते हैं- ''उन्हें सबसे बड़ी हैरत ये जानकर हुई कि अंग्रेज वाकई जा रहे हैं। हैरत ही नहीं, ये उनके लिए सदमें की बात थी।''[2]

जमींदारी उन्मूलन की प्रक्रिया तो बहुत पहले से ही शुरू हुई थी। अंग्रेजों के जाने के बाद इस प्रक्रिया में गती आई। लेकिन जमींदारी चली जाने की खबर से सभी जमींदार अपने

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 151
2. वही, पृ. 153

इलाके के पेड़ बेचने लगे तथा जमीनों के पट्टे लिख रहे थे। ''जहाँ तक जमीनों के पट्टे अपने अजीजों के नाम पर करने की बात थी आम तौर पर जमींदार किसानों को जमींन से बेदखल करके जमीन के पट्टे अपने या रिश्तेदारों के नाम कर रहे थे।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से जमींदारों के जमीन के बचाव के लिए गैरमार्ग से अपनाए तरीकों की जानकारी मिलती है।

कथा-नायक के दादाजी अब्बा मियाँ ने करीब एक हजार बीघे का पट्टा अपने बेटे अब्बा के नाम कर दिया। उसके बाद दो सौ बीघे की बाग थी वह भी अब्बा के नाम कर दी। बाकी सभी जमींन सरकार में जमा हो जाती है। हजार बीघे के पट्टे में कुछ अनाज नहीं आता था और हर साल लगान देना पड़ता था। इस कारण वह जमींन छोड़ दी जाती है। बाद में सरकार सिलिंग नामक कानून पास करवाती है जिसके तहत् पैंतीस एकड़ से ज्यादा जमींन सरकार छीन लेनेवाली थी। अब्बा अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी अपनी पैंतीस एकड़ से ज्यादा जमींन नहीं बचा पाते हैं।

जमींदारी के कारण ही अब्बा मियाँ को समाज में मान-सम्मान था। जिसके चले जाने के कारण वह बहुत नाराज हो जाते हैं। लेखक लिखते हैं- ''अब्बा मियाँ का जो कुछ भी था जमींदारी ही थी। वही सैकड़ों सालों से पुरखों की बची जायदाद थी। उसी से उनका सम्मान था। उसी से उनका नाम था। उसी से उनकी आमदनी थी। वही उनकी जिंदगी का ढर्रा थी।''[2] जमींदारी चली जाने के बाद अब्बा मियाँ कभी अपने इलाके पर नहीं जाते हैं। ''वो ये नहीं चाहते थे कि जहाँ उनका जबरदस्त रोब-दाब था, जहाँ उनके नाम से लोग थर्राते थे, वहाँ वो एक आम आदमी की हैसियत से जाएँ।''[3] उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर निष्कर्षतः कहना सही होगा कि उपन्यासकार असगर वजाहत ने जमींदारी निर्मुलन के कारण जमींदारों के अहं को पहुँची ठेंच और परंपरा से चली आई विरासत का हाथ से छीन जाने से निर्माण हुई व्यथा को उपन्यास में मार्मिकता से चित्रित किया है।

4.3.2 जमींदार काँग्रेस संबंध -

आज़ादी के पश्चात् काँग्रेस के नेताओं ने गाँवों के जमींदारों को हटाने की योजना बनाई। रामबिहारी सिंह तोमर के मतानुसार, ''जमींदार उन्मूलन का आधार आर्थिक नहीं,

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 153
2. वही, पृ. 154
3. वही, पृ. 154

राजनीति था और वह था जमींदार और जनता के बीच सदैव चला संघर्ष। इसी के परिणामस्वरूप जमींदारी का उन्मूलन हुआ।''[1] जमींदारी प्रथा की फैली विकृतियों के कारण काँग्रेस ने इस प्रथा को बंद करने की जोरदार अपील की। आज़ादी के बाद काँग्रेस ने अपने चुनाव घोषणा पत्र के अनुसार विधेयक प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक के परिणामस्वरूप जमींदारी प्रथा का भारत में उन्मूलन हो गया। इस सारे घटनाक्रम में जमींदार और काँग्रेस खासकर मुसलमान जमींदारों के और काँग्रेस के संबंधों में कटूता आई। 'सात आसमान' उपन्यास में इस संबंध पर रोशनी डालने का प्रयास किया है। जमींदारों का शुरू से ही काँग्रेसियों के शासन के प्रति विरोधी रवैया दिखाई देता है। उनके अनुसार ''हुकूमत चलाना हँसी खेल नहीं है। ये दुकानों के सामने पालथी मारकर बैठ जाना, चर्खा कात लेना, जेल चले जाना दूसरी बात है और हुकूमत चलाना कुछ और है।''[2] स्पष्ट है कि जमींदार दिल से नहीं चाहते थे कि अंग्रेज चले जाएँ। उनका मानना था कि अंग्रेज नहीं जा सकते और अंग्रेज चले भी गए तो जमींदारी नहीं जा सकती क्योंकि ''ये काँग्रेसी जो जमींदारी खत्म करने की बातें करते हैं, इनमें से भी बहुत से जमींदार हैं। क्या वो अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारेंगे। जमींदारों के पास तो मुंशी-कारिंदे हैं, चौकीदार हैं। इनके जरिए पूरा काम चलता है। ये सब तहसील में नहीं हैं। तो जनाब, क्या तहसीलदार गाँव-गाँव लगान वसुल करने जाएगा।''[3] जमींदारों का मानना था कि जमींदारी प्रथा खत्म करने पर काँग्रेस तुला हुआ है इसलिए वह काँग्रेस के दुश्मन बन जाते हैं। अब्बा मियाँ के बारे में लेखक लिखते हैं- ''जमींदारी खत्म होने के बाद वो काँग्रेस के पक्के दुश्मन बन गए थे। उनका ये मानना था कि जमींदारी काँग्रेस ने खत्म की है।''[4] अब्बा मियाँ काँग्रेस का विरोध मरते दम तक करते हैं। वह राजनीति से दूर होते गए लेकिन चुनाव में वोट देना हो तो काँग्रेस को कभी न देते थे। अतः उस काल के सभी जमींदारों के प्रातिनिधिक के रूप में अब्बा मियाँ का चित्रण हुआ है। उस काल के सभी मुसलमान जमींदारों और काँग्रेस के बीच दरार बढ़ती ही गई हुई परिलक्षित होती है।

---

1. रामबिहारी सिंह तोमर - ग्रामीण समाजशास्त्र, पृ. 413
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 152
3. वही, पृ. 152
4. वही, पृ. 154

4.3.3 अवसरवादी प्रवृत्ति -

स्वतंत्रता के बाद नव-युग का आरंभ हुआ। लोग उन्नति के सपने देखने लगे, लेकिन प्रगति नहीं बल्कि शोषण ही बढ़कर तीव्र हो गया। इसकी कारणमीमांसा करते हुए डॉ. रघुवंश कहते हैं कि "अवसरवादिता, व्यक्तित्व का विघटन, विवेकहीनता, स्वार्थपरता, रूढ़िवादिता आदि दोष आज की राजनीति में समान रूप से देखे जा सकते हैं।"[1] भारत जब स्वतंत्र हुआ तब कुछ नेताओं ने दल बदलकर अपनी स्वार्थी वृत्ति का प्रदर्शन किया। 'सात आसमान' उपन्यास में लक्खू मियाँ खानदानी जमींदार हैं। जमींदारी खत्म होने के बाद वह राजनीति में प्रवेश करना चाहते हैं, लेकिन वह शिया मुसलमान होने और सुन्नीयों के वोट ज्यादा होने के कारण उन्हें मुस्लिम लीग में कोई जगह नजर नहीं आ रही थी। मुस्लिम लीग और काँग्रेस का विरोध होते हुए भी अंत में वह काँग्रेस में जाना पसंद करते हैं। उनके काँग्रेस प्रवेश के बारे में लेखक का कथन है- "उन्होंने काँग्रेस इलेक्शन में जाना शुरू कर दिया। वहाँ उन्हें हाथों-हाथ लिया गया। शहर का पढ़ा-लिखा, खानदानी इज्जतदार आदमी और वकील। इससे ज्यादा इस शहर में कोई क्या हो सकता था। लोगों का झुकाव देखकर उन्होंने भी अपने दिल से नफरत को एक कोने में ढकेला और खादी की शेरवानी और टोपी में आ गए।"[2] इस उद्धरण से जमींदारी खत्म होने के बाद यह वर्ग अवसरवादी बनता जा रहा हुआ परिलक्षित होता है। स्वातंत्र्यपूर्व काल का यह जमींदार वर्ग स्वातंत्र्योत्तर काल में गांधी टोपी पहनकर नए रूप में जनता के सामने आया और उसने राजनीति पर अपना कब्जा कर सामान्य जनता को गुलाम बना दिया।

4.3.4 मुस्लिम लीग और मुस्लिम समाज -

स्वाधीन भारत होने के बाद भारत-पाक विभाजन के वक्त हुए सांप्रदायिक हिंसा को देखते हुए भी भारतीय मुसलमान मुस्लिम लीग और बँ. जिन्ना की तारीफ करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। 'सात आसमान' उपन्यास में कथा-नायक के पिताजी अब्बा को राजनीति से दिलचस्पी नहीं है मगर वह जीन्ना की तारीफ करते नजर आते हैं। वह "जिन्ना के बारे में कहते थे कि वह

---

1. डॉ. रघुवंश - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 137
2. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 163

दिमागदार आदमी है। उसने पाकिस्तान के केस को अदालत के मुकद्दमें की तरह लड़ा है और केस जितवाया है।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से स्वातंत्र्योत्तरकालीन कुछ मुसलमान भारत-पाक विभाजन और सांप्रदायिकता का समर्थन करते हुए परिलक्षित होते हैं।

4.3.5 भ्रष्ट राजनीति -

स्वाधीनता के बाद राजनेताओं का एक नया गुठ निर्माण हुआ, जो आज़ाद भारत का इस्तेमाल सिर्फ अपने हित के लिए करना चाहता है। आजकल के नेता तो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए राजनीति में हिस्सा लेते हुए नजर आते हैं। कृष्णकुमार बिस्सा के अनुसार- ''आज इस कथित लोकतांत्रिक व्यवस्था में सिर्फ पूँजीपति लोग ही चुनाव लड़ सकते हैं।''[2] साथ ही चुनाव में गुंडों की मदद लेना आम बात हो गई है। राजनीतिक मूल्यों का पतन होकर अवसरवादिता ही कुशल राजनीति बन गई है। उपन्यासकार असगर वजाहत ने 'सात आसमान' उपन्यास में इसका चित्रण करते हुए लिखा है- ''देखते-देखते लोग बदल रहे थे। कल के फटीचर लोग एम्. एल. एम्. - एम्. पी. हो गए थे। कलक्टर उनको देखकर खड़ा हो जाता था। बनिए-बक्कालों ने खद्दर की टोपियाँ लगा ली थीं। गुंडों के इलेक्शनों में मजे आते थे। सरकारी पैसा पानी की तरह बह रहा था।''[3] निष्कर्षतः कहना सही होगा कि सैकड़ों सालों की दासता के बाद देश को आज़ादी मिली। आम आदमी अपने सुनहरे भविष्य और आज़ादी के सपने देखने लगा। दुर्भाग्यवश उनके सपने सपने ही रह गए। स्वाधीनता के पहले देश के दुश्मन बाहर के थे लेकिन स्वाधीनता के पश्चात् दुश्मन भीतर के ही दिखने लगे। देश का शासन पूँजीपतियों के हाथ में आ गया। उच्च वर्ग देश का शासक बन गया और निम्न वर्ग अज्ञान के कारण इसे पहचान नहीं पाया और जहाँ था वही रह गया। आज राजनीति ही नहीं बल्कि राजनीति के कारण सभी क्षेत्रों में भ्रष्ट व्यवस्था पनप रही है। इस व्यवस्था के आगे सामान्य मनुष्य दीन और विवश दृष्टिगोचर होता है।

---

1. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 155
2. कृष्णकुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, पृ. 97
3. असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 163

निष्कर्ष -

प्रस्तुत अध्याय के विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्ष रूप में जो तथ्य सामने आए हैं, वे इस प्रकार हैं -

1. भारतीय राजनीतिक जीवन में 1226 ई. से मुगलों का प्रवेश हुआ है। भारतवर्ष में मुगलों का शासनकाल साड़े तीन सौ वर्षों तक रहा है और अंग्रेजों के आगमन के बाद मुस्लिमों के कुछ छोटे-छोटे संस्थान करीबन सौ वर्षों तक शासन करते हुए परिलक्षित होते हैं।
2. मुगलकालीन राजनीति का चित्रण तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में बसे हुए मुसलमानों का राजनीतिक बहुआयामी चित्रण विवेच्य उपन्यासकार ने प्रचुर मात्रा में यथार्थ रूप में करने का प्रयास किया है।
3. मुगलकालीन अनेक बादशाहों ने धर्मग्रंथ कुरान के नीति-नियमों के अनुसार शासन न चलाते हुए वंश-परंपरा के अनुसार अपने मनचाहे कारोबार को ही राजनीति में स्थान दिया हुआ दिखाई देता है।
4. मुगलकालीन राजनीति में ऐशो-आराम, मान-सम्मान, भोग-विलास, स्वार्थी प्रवृत्तियों के साथ-साथ कूटनीतियों के भी दर्शन होते हैं।
5. विवेच्य उपन्यास में मुगलकालीन और अंग्रेजकालीन राजनीति का चित्रण अधिकतर यथार्थवादी प्रतीत होता है।
6. भारतवर्ष के अंग्रेजकालीन राजनीति में अंग्रेज शासन-प्रणाली के द्वारा भारतीय जनमानस पर अत्यंत अत्याचार हुआ परिलक्षित होता है।
7. भारत की लंबी पारतंत्रता के मूल में जमींदार और सामंतों की स्वार्थी, आत्मकेंद्रित वृत्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय राजनीति में यह वर्ग सबसे घिनौने रूप में उभर कर आया है।
8. महात्मा गांधीजी द्वारा चलाए अहिंसात्मक आंदोलन की शिक्षा भारतीय राजनीति के द्वारा विश्व की राजनीति को मिली हुई सबसे बड़ी देन है। भारतीय राजनीति में रक्तरहित क्रांति का जन्म अनोखी घटना मानी जाती है।

9. आम जनता ने अमानुष और अमानवीय अत्याचारों को सहते हुए आज़ादी प्राप्त की, लेकिन स्वतंत्रता के बाद राजनीति पर पूँजीपतियों का एकाधिकार स्थापित हुआ परिलक्षित होता है।
10. आज की भारतीय राजनीति में नैतिकता विरोधी तत्त्वों का समावेश हो रहा है। फलतः आज की राजनीति अपने तत्त्वों से हठकर विचित्र रूप में उभर रही है।
11. धर्मांध राजनीति और बढ़ती भ्रष्टता के कारण स्वातंत्र्योत्तकालीन राजनीति में पतन हो रहा परिलक्षित होता है। इस व्यवस्था के आगे सामान्य मनुष्य दीन और विवश दिखाई दे रहा है। विवेच्य उपन्यास में उपन्यासकार ने इसका वास्तविक एवं कलात्मक चित्रण किया है।